(समयसार) की १३ वीं गाथा है। प्रथम सम्यग्दर्शन कैसे होता है? प्रथम धर्म की शुरुआत (कैसे होती है)? तो कहते हैं कि नवतत्त्व के भेद के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है! कभी किया नहीं और यथार्थ सुनने में आया नहीं। आहाहा! जो नवतत्त्व है, वह तो भेदरूप है। भेदरूप है तो व्यवहार का विषय हुआ। उसमें से भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानन्द प्रभु एकरूप की अन्तर में दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की पहली सीढ़ी यह है, भाई! आहाहा! वे नव तत्त्व क्या हैं? यह पहले। कहते हैं — नव तत्त्व कैसे हुए, यह पहले कहते हैं। यहाँ आया न? **(शुद्धनय से नवतत्त्वों को जानने से आत्मा की अनुभूति होती है, इस हेतु से यह नियम कहा है।)....** सूक्ष्म बात है भगवान! आहाहा!

वहाँ विकारी होने योग्य.... शब्द है? क्या कहते हैं? १३ वीं गाथा, बीच में है, छह लाईन के बाद। **विकारी होने योग्य....** है? यह आत्मा में जो शुभभाव होता है — दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, यह शुभभाव-पुण्यभाव, यह जीव की पर्याय कहा जाता है। आहाहा! उसके लक्ष्य से धर्म नहीं और वह वस्तु धर्म नहीं। आहाहा! विकारी होने योग्य — ऐसा क्यों कहा? कि शुभभाव अपनी पर्याय में अपने से योग्यता से उत्पन्न होता है, कर्म तो उसमें निमित्त है परन्तु विकारी भाव — पुण्य का भाव — दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव अपनी पर्याय में योग्यता से अपने पुरुषार्थ से — उल्टे पुरुषार्थ से उस समय की उत्पन्न होने योग्य पर्याय से, जीव की भावपुण्य पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा!

श्रोता : उसमें कर्म की छाया पड़ती है — ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात बिल्कुल असत्य है। आहाहा! आत्मा कर्म को छूता ही नहीं, परन्तु (कर्म को) निमित्त कहा जाता है।

श्रोता : इसलिए उसकी छाया पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छाया-फाया कुछ नहीं है। दुनिया के अज्ञानी चाहे जो कहें, दुनिया को (कुछ पता नहीं है)। यह चीज तो वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि (में आयी है), उसका यह सार है। आहाहा! कि जीव की पर्याय में जिस समय पर्याय उत्पन्न होने योग्य है, उस समय पुण्यभाव उत्पन्न होता है। यह पुण्यतत्त्व कहा, वह अपनी योग्यता से उत्पन्न होता है; कर्म से नहीं, कर्म को निमित्त कहा जाता है। क्या कहा यह? आहाहा! अभी तो व्यवहार का भी पता नहीं होता तो निश्चय तो कहाँ... यह सम्यग्दर्शन अनन्त काल में कभी नहीं किया। आहाहा!

इसलिए कहते हैं — **विकारी होने योग्य....** अपना शुभभाव और अशुभभाव — ये पुण्य और पाप होने योग्य हैं तो अपने से होते हैं। हैं? **और विकार करनेवाला — दोनों....** जो शुभभाव है, वह अपनी पर्याय में अपने से हुआ, तो पूर्व का जो कर्म है, उसे निमित्त कहा जाता है।

श्रोता : करने योग्य नहीं?

समाधान : करने योग्य कहा न, उसका अर्थ क्या? कि अपना स्वभाव नहीं है; त्रिकाल द्रव्य स्वभाव उससे (शुभभाव) उत्पन्न नहीं होता तो यह विकार उत्पन्न.... अरे! संवर कहते हैं, वह भी अभी आगे आयेगा, आने दो। बापू! मार्ग अलग है, भाई! आहाहा! अरेरे! यह मरकर चौरासी के अवतार में चाहे तो देव हो या चाहे तो अरबोंपति, राजा-सेठ हो, वे सब दुःख की रागाग्नि में सुलगते हैं। 'राग आग दाह दहै सदा' छहढाला में आता है। आहाहा! यह शुभ और अशुभराग, 'राग आग दाह दहै सदा', आहाहा! यह शुभ और अशुभराग, वह आग है, अग्नि है, भगवन्त! वह तेरी चीज नहीं है, आहाहा! सेठ! यह थोड़ी दूसरी बात यहाँ आयी है, आहाहा! इसके लिए तो आये हैं न यहाँ, इनके घर में तो (तत्त्व का) प्रेम बहुत है। बहिन तो आती थीं, मुझे पता नहीं, वहाँ गये तो महीने रहे, इनके

घर में ठहरे थे न ? यहाँ तो बहिनों के साथ सम्बन्ध नहीं, पहिचान नहीं, पता भी नहीं होता कौन आती हैं और कौन जाती हैं। आहाहा! एक महीने रहीं थीं पहले।

यहाँ कहते हैं, सुन तो सही प्रभु! आहाहा! तेरी पर्याय में जब शुभभाव आता है, वह तेरी योग्यता से आता है। उस कालक्रम में जब दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव आता है... यह है ? **विकारी होने योग्य....** उसका अर्थ है। भाई! यह तो मन्त्र है। यह कोई साधारण कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा!

अपनी पर्याय में विकारी होने योग्य जो शुभभाव अपने से हुआ, अपनी योग्यता से हुआ, उसमें पूर्व के कर्म का उदय है। सूक्ष्म बात है, थोड़ी! पूर्व के कर्म का उदय वहाँ कदाचित् तीव्र भी हो, परन्तु यहाँ राग की मन्दता जिसने की, उसने उस कर्म का निमित्त जो है, उसको निमित्त 'करनेवाला' कहा, क्योंकि अपना स्वभाव नहीं है। अभी संवर में भी पर का सम्बन्ध करनेवाला... आहाहा! भेद है न ? वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। समझ में आया ? आहाहा! अभी बात समझ में न आये प्रभु! वह कहाँ जाये, किस ओर, किस तरफ झुके ? आहाहा! यहाँ तो पहले '**विकारी होने योग्य**' जो शुभभाव, वह जीव की पर्याय अपने से हुई है, तथापि उसके लक्ष्य से सम्यग्दर्शन नहीं होता। उससे नहीं होता, उसके लक्ष्य से नहीं होता — एक बात। **और विकार करनेवाला....** पूर्व का जो उदय है, उसको यहाँ शुभभाव में निमित्त कहकर 'करनेवाला' कहा है। सूक्ष्म बात।

सेठ! वहाँ कहाँ बैठे ? यहाँ जगह दो जगह। पुस्तक है पुस्तक ? समझ में आया ? क्या कहा देवीचन्दजी!

श्रोता : कर्म का उदय कदाचित् कराता है।

उत्तर : नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... कर्म का उदय तो कदाचित् तीव्र भी हो राग का परन्तु यहाँ राग की मन्दता अपने में अपनी योग्यता से की तो उस पूर्व के कर्म के उदय को निमित्त 'करनेवाला' कहने में आया है।

अरेरे! है ? यह तो प्रभु का महासिद्धान्त है। यह तो सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की वाणी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे। अब इसकी भी यहाँ शंका करते हैं, भाई! कि महाविदेह में नहीं गये थे। अरे! प्रभु! तुझे पता नहीं है।

पंचास्तिकाय की टीका में पाठ है — कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे और दर्शनसार में पाठ है, देवसेन आचार्य का दर्शनसार एक शास्त्र है, (उसमें कहा है) कि अरे! कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में जाकर ऐसी चीज न लाते तो हम मुनिपना कैसे पाते? आहाहा! मुनिराज कहते हैं। दर्शनसार! पुस्तक तो, हजारों शास्त्र हजारों पुस्तकें हैं। पंचास्तिकाय कहा न? वह तो जयसेनाचार्य की टीका में, पहले कहा। जयसेनाचार्य की टीका में ऐसा कहा कि महाविदेह में गये थे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य नग्न-दिगम्बर मुनि छद्मस्थ, आहाहा! और वहाँ जाकर, यहाँ शिवकुमार राजकुमार के लिये पंचास्तिकाय बनाया है — ऐसा पाठ - संस्कृत है। जयसेन आचार्य की टीका है। जयचन्दजी! जयसेनाचार्य और दर्शनसार नामक एक पुस्तक है, सिद्धान्त है।

यहाँ तो हजारों शास्त्र देखे हैं न! यहाँ तो १८ वर्ष की उम्र से हमारे (यही काम है) यहाँ तो ८९ हुआ। ९० चलते हैं, वास्तव में तो गर्भ के सवा नौ महीने गिनों तब तो ९० पूरे हो गये। लोग तो जन्म से गिनते हैं न? जन्म से... परन्तु माता के गर्भ में सवा नौ महीने आया, भगवान उसको भी कहते हैं (क्योंकि) वह यहाँ की आयु है। समझ में आया? यहाँ तो समय-समय की बात है भगवान! यहाँ तो ७२ वर्ष से चलता है। हम तो दुकान पर... घर की दुकान थी, वहाँ हम तो यह ही पढ़ते थे, ये नहीं, दिगम्बर नहीं थे; हम तो श्वेताम्बर थे न! स्थानकवासी थे। समझ में आया? वह पढ़ते थे। दुकान घर की थी, दुकान भी चलाते थे, दुकान पर जब हमारे भागीदार बैठे हैं तो हम अन्दर शास्त्र पढ़ते थे। वे नहीं (होते) तो हमें दुकान पर-गद्दी पर बैठना पड़ता। छोटी उम्र की बात है। १७ वर्ष से २२ वर्ष तक पाँच वर्ष, पाँच वर्ष दुकान चलायी थी पाप की, परन्तु फिर भी मैं तो शास्त्र पढ़ता था। तो उसमें भी शास्त्र पढ़ते थे। देखो, लोग यह कुछ नहीं, यह तो धन्धे में लवलीन परन्तु हम तो यह शास्त्र से तो इतना — ७२ वर्ष हुआ। आहाहा! यह दिगम्बर शास्त्र (विक्रम संवत्) ७८ से पढ़ते हैं, ५६ वर्ष हुए।

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक बार सुन तो सही! कि **विकारी होने योग्य....** जो शुभभाव **होने योग्य....** क्यों कहा? कि उस समय में वह जन्म-उत्पत्ति का काल है — शुभभाव की उत्पत्ति का काल है तो शुभभाव उत्पन्न हुआ है — यह एक बात। और

विकारी होने योग्य पाप — दो बात यहाँ हैं। शुभ-अशुभभाव। यह अशुभभाव होता है, पाप-हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना, काम-क्रोध, यह पैसा कमाना, ध्यान रखना, ब्याज उत्पन्न करना, व्यापार-धन्धे का भाव, यह सब पाप अशुभभाव है। यह अशुभ भी विकारी होने योग्य था। उस समय में यह उत्पत्ति का काल था। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो बताना है कि नवतत्त्व है, वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा!

जिसे सम्यग्दर्शन — धर्म की पहली सीढ़ी प्राप्त करना है तो उसको ये नव तत्त्व के भेद को जानना, जान करके, अखण्डानन्द चैतन्यभगवान पूर्णानन्द प्रभु एकरूप स्वरूप की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! अभी धर्म की पहली शुरुआत, चारित्र और विशेष स्थिरता और तप वह तो दूसरी कोई आगे की चीज है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि विकारी होने योग्य दो — शुभ और अशुभ, दोनों विकारी होने योग्य थे और विकार करनेवाला पूर्व के कर्म के उदय को निमित्त कहो, यह पुण्यभाव का करनेवाला निमित्त से कहा। वह पापभाव का करनेवाला निमित्त से कहा। आहाहा! समझ में आया? **दोनों पुण्य हैं तथा दोनों पाप हैं,....** है? दोनों पुण्य है और दोनों पाप हैं। कौन दो? कि जीव में पुण्य योग्य जो शुभभाव हुआ, वह जीव की पर्याय है और जो निमित्त है, वह अजीव की पर्याय है, दोनों पुण्य हैं और दोनों पाप हैं। आहाहा! समझ में आया?

जो शुभभाव हुआ, वह भावपुण्य है शुभ, और जो निमित्त है, वह द्रव्यपुण्य है कर्म, दोनों मिलकर दोनों को ही पुण्य कहा है, दोनों ही पुण्य हैं और दोनों ही पाप हैं। अपने में अशुभ की योग्यता से जो पापभाव हुआ वह अपने से जन्म-उत्पत्ति काल हुआ तो हुआ, उसमें पूर्व का कर्म का उदय है, उसको निमित्त से पाप कहा जाता है। अतः दोनों ही पुण्य और पाप हैं। जीव की पर्याय भी पुण्य-पाप है और अजीव की पर्याय भी पुण्य-पाप है। अभी तो यह तो व्यवहार है, अभी यह तो धर्म भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! दो बात हुई। दोनों पाप हैं। है? आया, 'दोनों' — समझे? जो भावपुण्य हुआ और भावपाप, उसमें जो निमित्त है, द्रव्य उदय तो यह और वह दोनों ही पुण्य हैं और दोनों ही पाप हैं। आहाहा!

तीसरी बात — **आस्त्रव होने योग्य....** टीका का तीसरा बोल। ये पुण्य-पाप दो मिलकर के आस्त्रव है, नये कर्म आने का कारण है, आहाहा! आस्त्रव होने योग्य, शुभ, अशुभभाव अपनी पर्याय में उस समय में जन्मक्षण के कारण उत्पत्ति का काल है, तो अपनी योग्यता से पुण्य-पाप का भाव आस्त्रव उत्पन्न होता है। आहाहा! शर्त बहुत कठिन, बापू! सूक्ष्म, समझना, आहाहा! बनियों को वह ब्याज-चक्रवर्ती निकालना हो तो निकालते हैं। चक्रवर्ती ब्याज समझते हैं? किसी को दस लाख रुपये दिये हैं आठ आने (ब्याज पर) पहले तो आठ आना था न? अब तो एक प्रतिशत, डेढ़ प्रतिशत होता है। तो दस लाख दिया हो तो एक दिन का दस लाख का आठ आना न? पहले आठ आना था। ब्याज चढ़ाकर दस लाख पर एक दिन का ब्याज चढ़ाकर दूसरे दिन ब्याजसहित का ब्याज चढ़ाकर... इसे चक्रवर्ती ब्याज कहते हैं। बारह माह का मूल ब्याजसहित पहले दस लाख, फिर दूसरे दिन का दस लाख के ऊपर जो उसका ब्याज आया, उसे मिलाकर उसके पीछे वापस उसको मिलाकर.... आहाहा! ये बनिये ऐसे चक्रवर्ती ब्याज निकालते हैं।

श्रोता : वे पुराने बनिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी के बनिये तो अभी ठीक हैं, यह तो पहले की बात है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि इस ब्याज की अपेक्षा यह दूसरी कोई चीज है। आहाहा! अपनी पर्याय में शुभ-अशुभभाव होने योग्य शब्द लिया है। वह क्यों? किस कारण? कि उस समय वह जन्म / उत्पत्ति का काल है, शुभाशुभ का, भाव तो उत्पन्न हुआ है, वह जीव की पर्याय हुई और उसमें पूर्व के कर्म का निमित्त है, वह अजीव की पर्याय हुई। उस निमित्त को यहाँ करनेवाला कहा और विकार को यहाँ योग्यतावाला — अपनी जीव की पर्याय को कहा — ऐसी बात है। भाई! है?

आस्त्रव होने योग्य.... आहाहा! यह क्यों कहा? कि किसी कर्म से यहाँ आस्त्रव हुआ है - ऐसा नहीं है। यहाँ अपनी पर्याय में अपने पुरुषार्थ की विपरीतता से... आहाहा! - वह शुभ और अशुभभाव होने योग्य अपने से हुआ है। **और आस्त्रव करनेवाला....** पूर्व के उदय को आस्त्रव करनेवाला कहा। **दोनों ही आस्त्रव हैं....** समझ में आया? शुभ-अशुभभाव, यह आस्त्रव और जो निमित्त कर्म हैं, वह भी आस्त्रव; एक जीव की पर्याय, एक

अजीव की पर्याय। पर्याय है, यह तो अभी नवतत्त्व सिद्ध करते हैं। इन नवतत्त्व में आत्मा भिन्न है — ऐसी नवतत्त्व की पर्याय से (आत्मा भिन्न है)। आहाहा! भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति प्रभु एक है, नवतत्त्व की पर्याय से भगवान अन्दर भिन्न है। है ?

श्रोता : भगवान नित्य क्या कार्य करता है ?

समाधान : कुछ नहीं करता — ऐसा का ऐसा है अनादि से। अनादि से ज्ञायक है, वह ऐसा है, वह कुछ नहीं करता और वह कुछ नहीं छोड़ता, वह पर्याय में नहीं आता। सूक्ष्म बात है, प्रभु! जैनदर्शन — वीतराग धर्म समझना वह अलौकिक बात है। चाहे जैसा भी तीव्र मिथ्यात्वभाव हो, निगोद में जाने की योग्यता (के योग्य) मिथ्यात्व के समय भी ज्ञायकभाव तो शुद्ध त्रिकाल एकरूप ही पड़ा है। आहाहा! और चाहे तो केवलज्ञान हो, उस केवलज्ञान की पर्याय के काल में भी ज्ञायक तो पूर्ण शुद्ध है ही है। उसमें न्यूनाधिकता कुछ हुई नहीं है। आहाहा!

श्रोता : ज्ञायक कुछ नहीं करता ?

समाधान : ज्ञायक कुछ नहीं करता। कर्तव्य तो पर्याय में है, ज्ञायक तो ज्ञायक ही, त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... (है)। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय है, वह तो कायम एकरूप रहता है; इसलिए तो यह नौ की बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया ? अभी तो नौ समझ में न आवे, उसे सम्यग्दर्शन का विषय अभेद कहाँ से आयेगा ? वह तो भटक कर मरनेवाला है, आहाहा! समझ में आया ? आहा! बापू! देह छूटी और आँखें बन्द हो जायेंगी, चला जायेगा नरक और निगोद, वहाँ कोई अवतार, जहाँ आत्मा का ज्ञान नहीं किया, सम्यग्दर्शन नहीं किया... आहाहा! वह चौरासी के अवतार में अनजाने द्रव्य, अनजाने क्षेत्र, अनजाने काल, अनजाने भव, अनजाने भाव में वहाँ चला जायेगा। आहाहा! भाई! वहाँ कोई सिफारिश काम नहीं करेगी।

यहाँ कहते हैं कि एक बार सुन तो सही! नवतत्त्व की योग्यता कैसे है ? वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है, तो पहले नौ बतलाते हैं। आहाहा!

आस्रव करने योग्य, होने योग्य, **आस्रव करनेवाला दोनों आस्रव हैं।** वह कर्म का उदय है, वह भी द्रव्य आस्रव। नया आता है वह नहीं, सूक्ष्म बात है। यहाँ शुभ-

अशुभभाव हुआ, वह नये कर्म आते हैं, वे यहाँ नहीं। यहाँ तो जो पुराने कर्म हैं, जो यहाँ पुण्य-पाप का भाव हुआ, उसमें पुराना कर्म निमित्त कहा जाता है, उसको द्रव्य आस्रव कहते हैं और पर्याय को भाव आस्रव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भाई! वीतरागमार्ग...! आहाहा! जिसे इन्द्र सुनने जाते हैं, जिसको बत्तीस लाख विमान हैं, शक्रेन्द्र है, सौधर्म देवलोक का इन्द्र — बत्तीस लाख तो विमान, एक विमान में असंख्य देव हैं — ऐसे बत्तीस लाख विमान का स्वामी शक्रेन्द्र है। अभी तीन ज्ञान का स्वामी है — मति, श्रुत, अवधि; और शास्त्र में - सिद्धान्त में यह कथन है कि वह जीव ऐसा है कि मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा, एक भवातारी है। अभी सौधर्म देवलोक में इन्द्र है, वह सुनने को आते हैं, भगवान के पास, तो वह वाणी कैसी होगी? आहाहा! यह दया पालो, और व्रत पालो, और अब यह तो कुम्हार भी कहते हैं। समझ में आया?

जो तीन ज्ञान का स्वामी एक भवातारी है, और जिसकी पत्नी भी एक भवातारी है, हजारो इन्द्रियाँ हैं, और उनमें एक मुख्य इन्द्राणी है, वह एक भव में मोक्ष जानेवाली है। वह भी वहाँ समकिती है, तीन ज्ञान हैं, वहाँ से मनुष्य होकर दोनों मोक्ष जानेवाले हैं। वे भगवान के पास महाविदेह में सुनने को जाते हैं। (जब भगवान) यहाँ थे, तो यहाँ आते थे। भगवान यहाँ थे तो यहाँ आते थे। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहना है कि ऐसा इन्द्र जैसा एकावतारी — एक भवतारी, यह सुनने को आते हैं। तीन ज्ञान के स्वामी समकिती ज्ञानी, आहाहा! वे सुनने को आते हैं। (तो) प्रभु की वह वाणी कैसी होगी? आहाहा! यहाँ तो अभी साधारण वाणी समझने योग्य नहीं, जानते नहीं। आहाहा! वह इन्द्र सरीखा भी यह बात सुनने के लिये भगवान के पास जाता है। यहाँ भगवान थे तो यहाँ आते थे। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं कि अभी तो नौ तत्त्व के भेद को दिखलाते हैं, तथापि नवतत्त्व का भेद वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहाहा! समझ में आया?

तत्पश्चात् **संवररूप होने योग्य....** है? संवररूप होने योग्य — यह क्या कहा? अपनी पर्याय में शुद्धता प्रगट होने की योग्यता अपनी पर्याय में हुई, अपनी योग्यता से संवर अर्थात् धर्म की पर्याय अपने काल में उत्पन्न होने की योग्यता से संवर-पर्याय उत्पन्न हुई, धर्म पर्याय (उत्पन्न हुई), आहाहा! वह भी पर्याय है, उसके लक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है

— ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! संवर है, वह दो प्रकार का है — एक आत्मा में शुद्धि, निर्मल अनन्त काल में प्रगट नहीं हुई — ऐसी दशा प्रगट हुई, वह भावसंवर और पूर्व के कर्म का उदय इतना उदय में नहीं आया, इसका नाम द्रव्यसंवर; दोनों को संवर कहा जाता है। एक भावसंवर और एक द्रव्यसंवर दोनों भेद हैं। आहाहा! इन दोनों के लक्ष्य से... ये पर्याय हैं तो इनके लक्ष्य से सम्यग्दर्शन नहीं होता। (जिसे सम्यग्दर्शन) हुआ है, उसको भी उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं टिकता। क्या कहा? संवर होने योग्य तो धर्म तो हुआ है परन्तु उसके आश्रय से समकित नहीं टिकता, आहाहा! उत्पन्न तो होता नहीं परन्तु उसके आश्रय से (टिकता भी नहीं) उत्पन्न तो हुआ है धर्म, सम्यग्दर्शन हुआ है, ज्ञान संवररूप दशा तो हुई है परन्तु उसके आश्रय से... सम्यग्दर्शन उत्पन्न तो पहले अपने स्व के आश्रय से हुआ परन्तु इस संवर के आश्रय से अब सम्यग्दर्शन टिक सकता है — ऐसा नहीं है। यह तो द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। होता है, टिकता है, वृद्धि प्राप्त करता है, वह त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से। आहाहा! ऐसी बात है। फुर्सत कहाँ है?

वह कहा था न, एक जापानी व्यक्ति है न बड़ा, बड़ा शोधक है। ६३ वर्ष की उम्र और १७ वर्ष का उसका एक लड़का है। बहुत शोध की है कि जैनधर्म क्या? अनुभूति वह जैनधर्म, ठीक! परन्तु फिर उसने ऐसा कहा कि यह जैनधर्म बनियों को मिला है और बनिये व्यवसाय में घुस गये हैं। जापानी ने (ऐसा कहा है।) व्यापार कहो, या व्यवसाय कहो या अधर्म कहो, सब एक ही है। जापानी व्यक्ति बड़ा शोधक है, बहुत शोधक, हजारों शास्त्र शोधकर जापान में एक संस्था स्थापित की है, जापान में ऐसा शोध करके उसने यहाँ आया है, छापा है। छापा है और कल दिया है तो उसने निकाला कि 'आत्मानुभूति' वह जैनधर्म है और आत्मा निर्वाणस्वरूप है — ऐसा उसने निकाला है। क्या कहा? समझ में आया?

आत्मा जो त्रिकाली स्वरूप है, उसका अनुभव करना, उसके आश्रय से अनुभव करना, वीतरागीदशा प्रगट करना, सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह अनुभूति धर्म है। वह कहते हैं; और आत्मा क्या है, जैनधर्म कहता है कि आत्मा निर्वाणस्वरूप है। आहाहा! अपने यहाँ कहते हैं मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप ही आत्मा अन्दर है। आत्मा, राग के सम्बन्ध से बँधा

हुआ, आत्मा में बन्ध नहीं हुआ है। आहाहा! वह तो पर्याय में राग के सम्बन्ध से बन्ध है। द्रव्य जो वस्तु है वह तो अन्दर मुक्तस्वरूप है, आहाहा! ऐसी बात अब! वह ऐसा कहते हैं। फिर लिखा है कि अरे! बनियों के हाथ में यह जैनधर्म आया और बनिये व्यवसाय में घुस गये हैं। व्यापार और धन्धा... आहाहा! उसमें यह जैनधर्म क्या है? उसको प्रगट करने का अवसर नहीं मिलता। आहाहा!

श्रोता : तब व्यापार करना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार कौन कर सकता है? राग कर सकता है। यहाँ कहा न? व्यापार की क्रिया आत्मा कर सकता है? पैसा लेना-देना? ये खेती का काम पण्डितजी को है न? कृषि पण्डित! वह आत्मा कर सकता है?

श्रोता : पैसा तो ले सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा आत्मा के पास आता है? पैसा तो जड़ है। भगवान तो अरूपी चैतन्य है तो उसके पास पैसा आता है?

श्रोता : आत्मा सर्व शक्तिमान है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व शक्तिमान.... तो जड़ के ऊपर शक्तिमान है — ऐसा कहा? जड़ का शक्तिमान है, ऐसा शक्तिमान है? ऐसा नहीं है। आहाहा! आत्मा तीन काल में एक अंगुली चला नहीं सकता। अंगुली चलती है वह आत्मा से चलती है, यह तीन काल-तीन लोक में नहीं है, क्योंकि वह जड़ की अजीव की पर्याय है। वह अजीव की पर्याय अजीव के काल में अपने जन्मक्षण के कारण उत्पत्ति के काल में ऐसा उत्पाद होता है। आत्मा से नहीं। आहाहा! एक बात।

दूसरी बात — भगवान आत्मा जो स्वद्रव्य है, वह अजीव को कभी स्पर्श नहीं करता। क्या कहा?

श्रोता : अजीव को स्पर्श नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आत्मा जो अरूपी चैतन्यघन है, वह कभी शरीर को स्पर्श नहीं करता, कर्म को स्पर्श नहीं करता, अंगुली को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह

जो हार होता है, उसको आत्मा कभी स्पर्श नहीं करता। पानी आता है, उसको आत्मा कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तुम यह क्या कहते हो? है? यह जैन परमेश्वर की दुनिया दूसरी है। डाह्याभाई! यह हमारे जज बैठे हैं, जज हैं न, बड़े जज हैं अहमदाबाद में। अब छुट्टी हो गयी, छुट्टी हो गयी, निवृत्ति है। आहाहा! हमारे व्याख्यान में सब जज आते थे, अहमदाबाद जाते हैं तो सब आते हैं। बड़े-बड़े वकील, जज, परन्तु यह चीज पहले समझने में नहीं मिलती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि संवर होने योग्य तो आत्मा है। अपनी पर्याय में धर्म की दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा, अपनी योग्यता से, अपने काल में उत्पन्न होने की योग्यता से अपने में उत्पन्न होती है। संवर किसी राग के कारण से उत्पन्न होता है, व्यवहार, राग किया और राग के कारण से संवर हुआ — ऐसी चीज नहीं है। अभी तो नवतत्त्व का भेद समझाते हैं। आहाहा! समझ में आया? **संवर होने योग्य....** जीव, संवार्य — ऐसा संस्कृत में कहा है। **और संवर करनेवाला (संवारक)....** पूर्व का उदय इतना उदय नहीं आया, उसको निमित्तरूप से संवर कहा जाता है। आहाहा!

अब, निर्जरा — **निर्जरा होने योग्य....** अब क्या कहते हैं? आत्मा में जो संवर-शुद्धि उत्पन्न हुई, वह पर्याय है परन्तु बाद में विशेष शुद्धि का उत्पन्न होना, वह निर्जरा है। आहाहा! भाषा दीठ भाव में अन्तर है। संवर, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ, वह शुद्ध है और निर्जरा है, वह शुद्धि की विशेष वृद्धि है तो यह शुद्धि की जो विशेष वृद्धि अपने कारण से उत्पन्न हुई है... आहाहा! कोई अपवास किया और ऐसा किया इसलिए निर्जरा हुई ऐसा है नहीं। अपवास आदि करने में तो शुभराग है, वह कोई निर्जरा नहीं और धर्म नहीं। आहाहा!

श्रोता : उपवास से निर्जरा नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास ये सब हैं। उपवास तो उसको कहते हैं कि उप... वास — शुद्ध चैतन्यघन प्रभु 'उप' अर्थात् समीप में जाकर बसना, टिकना अन्दर में उसको उपवास कहते हैं — ऐसे भान बिना यह लंघन करते हैं, एक दो और तीन, पाँच, दस, अपवास और पचास अपवास यह सब अपवास है, उपवास नहीं। अप अर्थात् खोटा वास, बुरा राग के वास में पड़ा है वह। आहाहा!

श्रोता : सबका अर्थ बदल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका अर्थ बदल जाता है भाई! भगवान! आहाहा! त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेह में तो श्रीमुख से यह कह रहे हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे...! मनुष्यपना आया, उसमें यह बात समझ में न आवे तो मनुष्यपना मिला, न मिला (जैसा) है। आहाहा! यह तो ढोर को — पशु को नहीं मिला है और इसे मिला है परन्तु यदि यह वस्तु समझ में न आयी तो मिला, वह न मिला हो जायेगा; जायेगा नरक और निगोद के अनन्त भव में चला जायेगा, भाई! आहाहा! यहाँ कहते हैं निर्जरा होने के योग्य, अर्थात् अशुद्धि का नाश होने योग्य और शुद्धि की उत्पत्ति होने योग्य, यह भावनिर्जरा, यह शुद्ध जीव की पर्याय है। गाथा ऐसी आ गयी, यह ठीक है।

श्रोता : आज तो बहुत मजा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिज्ञासु हैं न भगवान, आहाहा!

यह आत्मा अन्दर आनन्दकन्द प्रभु (है), उसके आश्रय से जो शुद्धि की वृद्धि हुई, उसका नाम निर्जरा है। निर्जरा के तीन प्रकार — एक शुद्धि की वृद्धि हो, वह निर्जरा; एक अशुद्धि का नाश हो, वह निर्जरा और यहाँ अशुद्धता का नाश हुआ तो वहाँ कर्म का इतना उदय भी नहीं आता है, नाश होता है, वह द्रव्यनिर्जरा। अभी तो नवतत्त्व की बात चलती है, अभी तो.... आहाहा! समझ में आया? भाई! नहीं आये हमारे जीवराजजी? शरीर को ठीक नहीं होगा, नहीं आये? ब्लडप्रेशर २४५ हो गया। क्या कहलाता है वह? ब्लडप्रेशर २४५। जीवराजजी को है बहुत समय से रहा करता है, ब्लडप्रेशर। जड़ की पर्याय है भाई! आहा...हा...! ब्लडप्रेशर हो या क्षयरोग हो या कैंसर हो, वह तो जड़ की पर्याय है। मिट्टी, धूल की (पर्याय है)। वह भगवान में नहीं है। आहाहा! भगवान शब्द से यह आत्मा। आत्मा रोग को कभी तीन काल में स्पर्श ही नहीं करता, अरे! उसको तो स्पर्श नहीं करता परन्तु ज्ञायकभाव भगवान सच्चिदानन्द प्रभु द्रव्यस्वभाव, राग को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! राग को स्पर्श नहीं करता, परन्तु धर्म की पर्याय जो उत्पन्न होती है, उसको द्रव्य स्पर्श नहीं करता - ऐसा मार्ग है बापू! अरेरे! समझ में आया? द्रव्य जो ज्ञायकस्वरूप है, वह तो त्रिकाल एकरूप रहनेवाली चीज है, वह पर्याय में आती नहीं। यह तो अभी पर्याय के भेद की व्याख्या करते हैं। आहाहा!

निर्जरा होने योग्य और निर्जरा करनेवाला.... अर्थात् पुराने कर्म खिर गये, वह निर्जरा करनेवाला कहा गया है। **दोनों निर्जरा हैं,....** एक अजीव की पर्याय, एक जीव की पर्याय, दोनों निर्जरा हैं।

बँधने के योग्य.... आत्मा विकार की पर्याय में बँधने के योग्य अपने कारण से... आहाहा! राग-पुण्य-पाप के भाव से बँधने योग्य, विकार से बँधने योग्य, वह अपनी योग्यता से बँधने योग्य होता है। किसी कर्म के कारण से बँधने योग्य भाव होता है — ऐसा है नहीं। आहाहा! बँधने के योग्य, वह जीव की पर्याय; बँधन करनेवाला वह पुराना कर्म; यहाँ नये की बात नहीं है। पुराने कर्म निमित्त है, वह बँधन करनेवाले को, द्रव्यबन्ध कहा है, अजीव की पर्याय कहा है। यह भावबन्ध है, वह जीव की पर्याय है, आहाहा! अभी तो नवतत्त्व समझाते हैं, **दोनों बन्ध है।**

मोक्ष होने योग्य.... अब अन्तिम... आहाहा! भगवान आत्मा में केवलज्ञान में सिद्धपद के होने योग्य के काल में मोक्षपर्याय होती है। आहाहा! अपने स्वकाल में मोक्ष होने के समय में अपने निज क्षण में मोक्ष की पर्याय की उत्पत्ति का काल था, तो उसमें मोक्षदशा उत्पन्न हुई, वह मोक्षदशा जीव की पर्याय है। आहाहा! पर्याय है, वह द्रव्य नहीं, आहाहा! मोक्ष होने योग्य जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वह जीव द्रव्य नहीं, पर्याय है। आहाहा! और उस समय कर्म का छूट जाना, वह द्रव्यमोक्ष है। यह भावमोक्ष है, वह कर्म छूट जाना द्रव्यमोक्ष है, एक जीव की पर्याय है, एक अजीव की पर्याय है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बापू! आहाहा! ज्ञान को फैलाना पड़ेगा, भाई! आहाहा!

वह आटा होता है न आटा, लोट, लोट, बनाते हैं न? कोई रोटी तुरन्त बनाते हैं? उस आटे को फैलाते हैं ऐसा। वैसे ज्ञान में पहले यह बात फैलानी पड़ेगी प्रभु! आहाहा! तुझे जानने योग्य को जानना पड़ेगा, आहाहा! अरे! **मोक्ष होने योग्य....** होने योग्य क्यों कहा? कि उस समय में केवलज्ञान की उत्पत्ति होने योग्य अपनी पर्याय में योग्यता से उत्पन्न हुई है, किसी कर्म का क्षय हुआ तो मोक्ष की पर्याय उत्पन्न हुई है — ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं?

श्रोता : शुद्ध द्रव्य कहा है?

समाधान : नहीं, नहीं; यह तो पर्याय की बात है। वह पर्याय है, वह शुद्ध द्रव्य नहीं। यहाँ तो नौ पर्याय से भिन्न द्रव्य है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, यह बतलाना है। सूक्ष्म बात है। यह बात तो अभी सुनने में कठिन पड़ती है। बाहर में ऐसा कहते हैं कि व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ, गजरथ निकालो, रथ निकालो... कौन करे ? वह तो जड़ की, पर की क्रिया है, उसमें कदाचित् तेरा भाव मन्द हो तो, राग की मन्दता हो तो वह पुण्य है, वह कोई धर्म नहीं है।

श्रोता : आप धर्म किसे कहते हैं ?

समाधान : यह कहते हैं न, कि यह नौ तत्त्व की जो पर्याय है, एक जीव की और एक अजीव की; दोनों को छोड़कर, दोनों की नवतत्त्व की पर्याय के भेद को छोड़कर, त्रिकाली अखण्डानन्द प्रभु जो शुद्ध है, जो पर्याय में कभी नहीं आया, कभी मलिन नहीं हुआ; कभी केवलज्ञान की पर्याय में भी आत्मा नहीं आता - ऐसी बात है। आहाहा!

श्रोता : परन्तु ऐसा हमारे देश में सुनायी नहीं देता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे ऐसा समय हो ऐसा मनुष्यपना, बापू! अभी नहीं करे तो कब करेगा, भाई! यह मनुष्यपना तो विघट जायेगा, भाई! आँख बन्द करके चला जायेगा, भटकता हुआ जीव। आहाहा! यह पवन होती है न ? आँधी नहीं होती, आँधी कहते हैं या क्या कहते हैं ? उसमें तिनका होता है तिनका, उड़कर कहाँ जायेगा ? आहाहा! ऐसे जिसको अभी सम्यग्दर्शन नहीं है, मिथ्याश्रद्धा में पड़ा है, वह तिनका (जीव) उड़कर कहाँ जायेगा, भाई! आहाहा!

यहाँ बड़ा चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, सोलह हजार देव सेवा करते थे, परन्तु मिथ्यात्व का पाप सेवन करता था। ऐसे हीरे के पलंग पर सोता था, उसकी एक स्त्री की तो हजार देव सेवा करते थे, स्त्री की हजार देव सेवा करते थे — ऐसी तो छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं, वह आँख बन्द करके, प्रभु! उस पलंग में से दूसरे समय सातवें नरक में गया। आहाहा! जिसके एक क्षण की वेदना... प्रभु! करोड़ों जीभ और करोड़ों भव में कही नहीं जा सके — ऐसी वेदना में गया। एक क्षण नहीं परन्तु तैंतीस सागर (की आयु प्राप्त हुई)। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी

पल्योपम; एक पल्योपम में असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष (होते हैं)। आहाहा! भाई! ऐसे दुःख तूने अनन्त बार सहन किये हैं, अनन्त बार नरक में गया है, अनन्त बार निगोद में गया है। प्रभु! तुझे पता नहीं है। भूल गया इसलिए नहीं था — ऐसा कैसे कहें? आहाहा! समझ में आया? जन्म के बाद छह महीने में क्या हुआ, यह अभी पता है? पता नहीं इसलिए नहीं था — ऐसा कौन कहे? इसी प्रकार अनन्त काल में दुःख सहन किया, वह पता नहीं है तो नहीं था — ऐसा कौन कहे? समझ में आया? लॉजिक से-न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं? आहाहा! (यह) तो तेरे जन्म-मरण के दुःख की दशा... भगवान पुकार करते हैं, प्रभु! इस दुःख को क्या कहें? वह दुःख तो सहन किया परन्तु दुःख, तेरे दुःख देखनेवाले को आँसू की धारा चलती थी, आहाहा! वह दुःख मिटाने का रास्ता... आहाहा! नवतत्त्व की दृष्टि छोड़कर... आहाहा! क्योंकि नौ तत्त्व, वह पर्याय का भेद है। आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़कर (द्रव्यस्वभाव का लक्ष्य कर) आहाहा! समझ में आया?

मोक्ष होने योग्य तथा मोक्ष करनेवाला - दोनों मोक्ष हैं;.... आहाहा! क्यों? **क्योंकि एक के ही अपने आप पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष की उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती।....** क्या कहते हैं? अकेला प्रभु ज्ञायकभाव, उसमें यह भेदभाव नहीं होता। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के कारण यह भेदभाव होता है। अकेले ज्ञायकभाव में यह नव भेद नहीं होता। अपनी पर्याय की योग्यता और निमित्त — दूसरी चीज, दो के कारण से यह नव भेद उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? **क्योंकि एक के ही अपने आप, अपने कारण से पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध की सिद्धि नहीं होती।** अकेले ज्ञायकभाव में नौ भेद कैसे आये? उसकी पर्याय और निमित्त दो मिलकर नौ भेद हुए हैं। आहाहा! हैं! आहाहा!

वे दोनों जीव और अजीव हैं.... कौन दो? जो जीव की पर्याय है, वह जीव कहने में आती है और जो उदय-अजीव है, उसे अजीव कहने में आता है। दो मिलकर जीव-अजीव हैं। आहाहा! समझ में आया? ये दोनों जीव-अजीव हैं, अर्थात् उन दोनों में से, दो में से एक जीव है और दूसरा अजीव है। आहाहा! यह पुण्य-पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा,

बन्ध और मोक्ष वह जीव की पर्याय है तथा जो कर्म का उदय है, वह अजीव की पर्याय निमित्त है। दो मिलकर यहाँ नौ भेद हुए हैं। अकेले आत्मा में नौ भेद नहीं होते, आहा! आहाहा!

अब दूसरी चीज, वे तो नौ सिद्ध किये, वे सम्यग्दर्शन का विषय नहीं हैं। आहाहा! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी का विषय वह नौ नहीं है। आहाहा! यह देव-गुरु और शास्त्र तो पर रह गये, वे भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी उत्पन्न होने में त्रिकाली ज्ञायकभाव ही एक आश्रय करने योग्य है, बस! आहाहा! सूक्ष्म तो है परन्तु वस्तु ऐसी है। आहाहा! अब यह कहते हैं।

बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाये.... क्या कहते हैं? स्थूल दृष्टि से देखा जाये तो **जीव-पुद्गल की अनादि बन्धपर्याय के समीप जाकर....** आहाहा! जीव की पर्याय और अजीव की पर्याय दोनों के समीप जाकर **एकरूप से अनुभव करने पर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं....** नौ हैं। आहाहा! नौ प्रकार की पर्यायें हैं। असत्य है, झूठ है — ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **जीव-पुद्गल की अनादि बन्धपर्याय के समीप जाकर एकरूप से अनुभव करने पर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं,....** नौ पर्याय है, नौ भेद है। **एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं; असत्यार्थ हैं....** आहाहा! क्या कहा? आहाहा! एक स्वरूप भगवान आत्मा के समीप जाकर एकत्व का अनुभव करने पर ये नौ अभूतार्थ -झूठे हैं। आहाहा! डाह्याभाई! यह बात है भाई! कभी सुनी नहीं, बैठे तो कहाँ से? आहाहा! ऐसी की ऐसी जिन्दगी बिना भान के जिन्दगी निकल जाती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जीव और जड़ दो के भेद से विचार करने से नौ हैं, नौ हैं **और एक जीवद्रव्य के स्वभाव,....** भगवान पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव स्वभाव, नित्य स्वभाव, सामान्य स्वभाव, एक रूप स्वभाव.... आहाहा! उसके **समीप जाकर,** एकरूप स्वभाव के समीप जाकर.... है? **अनुभव करने पर अभूतार्थ है,** नौ बात (भेद) सत्य नहीं हैं, पर्याय भाव असत्यार्थ है। है?

श्रोता : समीप कैसे जाना?

समाधान : कहते हैं न, अन्दर उस ओर के भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद में जाना।

सूक्ष्म बात है बापू! आहाहा! यह तो अनन्त काल में एक सेकेण्ड कभी किया नहीं। राग आग दाह दहै, जल गया है, मर गया है उसमें। आहाहा! विकल्प की जाल में जल गया है, मर गया है। इसे भान नहीं है। अन्दर मैं क्या चीज हूँ? आनन्द के नाथ ज्ञायकभाव से विराजमान प्रभु। आहाहा! उसको राग की अग्नि में सुलगा दिया। आहाहा! वह जलता नहीं। राग से जल गया तो उसको ज्ञायकभाव है नहीं — ऐसा हुआ। क्या कहा?

राग की पर्याय में एकाकार से जल उठा तो उसको ज्ञायकभाव है नहीं, तो उसके लिए ज्ञायकभाव तो मर गया है। आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' (में) अमृतचन्द्राचार्य.... सन्त तो सब दिगम्बर हैं, (वे कहते हैं) — यह पर की दया पालने का भाव राग है, वह स्वरूप की हिंसा है। वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञायक स्थायी चीज है, उसमें वह राग-विकृतदशा हुई, वह स्वरूप की हिंसा हुई। अपने स्वरूप का निषेध हुआ, राग का अस्तित्व प्रसिद्ध में आया!

श्रोता : इसमें हिंसा क्या हुई?

समाधान : राग हुआ, उसका क्या अर्थ हुआ? राग की अस्ति देखने में त्रिकाल की अस्ति छूट गयी, दृष्टि में से छूट गयी। आहाहा! कठिन बात, भाई! एकरूप वस्तु में से निकलकर विकल्प आया है, चाहे तो... धर्म का, आहाहा! इस अपने स्वरूप का आश्रय नहीं लिया और राग का आश्रय लिया तो स्वरूप की हिंसा हुई। आहाहा!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)